Indian J. Soc & Pol. 03(01): 2016:63-66 **ISSN 2348-0084 (P)**
ISSN 2455-2127 (O)

संवैधानिक संशोधन एवं न्यायिक पुनरावलोकन : अर्न्तसम्बन्धों की समीक्षा

अजय सिंह[1]
एसो0 प्रोफेसर (राज0 शास्त्र),हण्डिया पी0जी0 कालेज,हण्डिया, इलाहाबाद (उ0प्र0) भारत

ABSTRACT

संविधान (चौथा संशोधन) बिल दोनों सदनों की संयुक्त समिति को सुपुर्द करने का प्रस्ताव रखते समय प्रधानमंत्री नेहरू ने कहा कि संविधान जल्दी–जल्दी बदला नहीं जा सकता और न ही बदला जाना चाहिए। यह भी साफ है कि जब हालात की जरूरत हो तो इसे बदला जाना चाहिए। यह याद रखा जाना चाहिए कि संविधान किसी समय के लिए चाहे जितना अच्छा हो, कुछ समय काम करने के बाद इसमें कमियाँ उभरने लगती है। कोई भी चीज त्रुटिहीन नहीं होती, और तब इन कमियों को दूर करने के लिए परिवर्तनों की जरूरत पड़ती है इसी भाषण में नेहरू के संविधान ने हमारे स्कीम में न्यायिक समीक्षा की संभावना को रेखांकित करने का प्रयत्न किया। वह यह कि किस हद तक न्यायपालिका द्वारा रोक लगाये या समीक्षा किये संसद अपना अधिकार जता सकती थी। उन्होंने स्वीकार किया कि भारत में संविधान तथा आम विचार–व्यवहार के मूल आधारों में एक स्वतंत्र उतरे शक्तिशाली न्यायपालिका का होना था। ''न्यायपालिका के अधिकार को चैलेंज करने, संशोधित करने, सीमित या कम करने का कोई प्रश्न नहीं था''। लेकिन न्यायपालिका को पूरे सम्मान के बावजूद यह कहना पड़ेगा कि वह उच्च राजनीतिक सामाजिक या आर्थिक या अन्य प्रश्न तय नहीं कर सकती। यह संसद का काम था। नेहरू ने आगे कहा ''हो सकता है,और है भी, कि संसद के कानून की व्याख्या में या वह तय करने में कि यह कानून संविधान के प्रावधानों से कितना मेल खाता है, वे अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक या आर्थिक या इस तरह के सवालों पर निर्णय ले। प्रस्तुत शोध पत्र में इस जटिल अर्न्तसंबंध पर प्रकाश डालनें का प्रयास किया गया है कि संविधान के मूल भावना के अनुसार संसद संविधान का किस हद तक संशोधन कर सकती है तथा सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा किस हद तक न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

KEYWORDS**:** *संविधान, मूल ढांचा, संवैधानिक संशोधन, न्यायवालिका, न्यायिक पुनर्विलोकन*

नेहरू ने कहा :''यदि आप इस देश पर लोकतान्त्रिक तरीके से शासन करना चाहते हैं तो आपको सिर्फ विधायिका पर इस मामले में ही नहीं बल्कि सैकड़ों दूसरे अधिक महत्वपूर्ण मामलों में भी विश्वास करना होगा। विधायिका किसी दूरगामी बदलाव पर विचार कर सकती है जिसका असर मान लीजिए युद्ध और शक्ति जैसे महत्वपूर्ण मामलों पर पड़ सकता है। स्पष्ट है कि सुप्रीम कोर्ट इसे तय नहीं करेगी। यह कुछ दूसरे सवाल तय कर सकती है, जा सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से सम्पत्ति पर प्रभाव डाल सकती है। हर ऐसे किस्म के फैसले लिए जा सकते है जिनका सामाजिक और आर्थिक ढाँचों उदाहरण के लिए योजना पर जोरदार असर पड़ सकता है। लेकिन यह विधायिका का विचार होगा जो अन्त में निर्णायक होगा। ऐसा रास्ता तभी अपनाया जा सकता है जब आप सोचे कि सम्पत्ति कोई अर्द्ध दैवीय चीज है और निजी सम्पत्ति राष्ट्र के हित में सबसे बड़ी चीज है जो स्पष्टतः आज शायद ही कोई कहे।(नेहरू स्पीचेज, खंड 3 पृ129)

चौथे संशोधन के पश्चात कुछ समय तक तो कोई नई कठिनाई नहीं प्रस्तुत हुई तथा सज्जन सिंह(ए आई आर 1965, एस सी 845) में उच्चतम न्यायालय अपने पूर्ववर्ती शंकरी प्रसाद(ए आई आर 1965, एस सी 458) वाले निर्णय पर दृढ़ रहा। उच्चतम न्यायालय ने यहाँ भी अपने पूर्व निर्णय को यथावत रखते हुए कहा कि यदि संविधान संशोधन को भी अनु0 13 के अन्तर्गत विधि मानने का आशय होता तो उसका स्पष्ट उल्लेख संविधान में कर दिया जाता अर्थात मूल अधिकारों को संशोधन की परिधि से बाहर रखा जाता। उपर्युक्त केस में उच्चतम न्यायालय ने 3 : 2 के बहुमत के द्वारा शंकरी प्रसाद के निर्णय को उचित माना। न्याय0, हिदायत उल्ला और न्याय0 मघोलकर ने अलग–अलग विसम्मत निर्णय दिए। न्याय0 हिदायतउल्ला का यह विचार था कि मूल अधिकारों को संशोधन करने वाले विधेयक को राज्यों के अनुसमर्थन की अपेक्षा होगी क्योंकि यदि ऐसा नहीं हुआ तो जिस दल का विशेष बहुमत है वह मूल अधिकारों के साथ खिलवाड़ करेगा। न्यायमूर्ति मघोलकर ने यह विचार व्यक्त किया कि प्रत्येक संविधान के कुछ ऐसे मूल लक्षण या आधार स्तम्भ होते हैं जिनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

द्वितीय चरण

1967 में न्यायालय ने गोलकनाथ(ए आई आर 1967, एस सी 1643) में अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों को पलट दिया। बहुमत ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि संविधान ने मूल अधिकारों को परमोच्च स्थिति प्रदान की। अनु0 368 के अधीन कार्य करते हुए संसद या किसी अन्य प्राधिकारी को यह शक्ति नहीं है कि वह मूल अधिकारों को न्यून करे या छीन सके। न्यायालय ने विधायी शक्ति और संविधायी शक्ति के बीच भेद करने से इंकार कर दिया। यह निर्णय 11 न्यायाधीशों की पीठ ने दिया था। 6 न्यायाधीश बहुमत में थे और 5 अल्पमत में। अल्पमत वाले

1: Corresponding Author

न्यायाधीशों ने यह माना कि मूल अधिकारों के संशोधन के बारे में जो मत पहले प्रकट किया गया है वह ठीक है अर्थात मूल अधिकारों का संशोधन किया जा सकता है।

गोलकनाथ(वही) की प्रतिक्रिया स्वरूप संसद ने संविधान (24वाँ संशोधन अधिनियम) 1971 पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा अनु0 13 में खण्ड (4) और अनु0 368 में एक नया खण्ड (1) अन्तः स्थापित किया गया। इस संशोधन द्वारा यह घोषणा की गयी कि अनु0 368 के अनुसार पारित संविधान का संशोधन अनु0 13 के अन्तर्गत विधि नहीं होगा। इस प्रकार अनु0 13 संविधान का संशोधन करने वाले अधिनियमों पर लागू नहीं होगा।(शर्मा,पृ55–56) यह मामला संवैधानिक संशोधन को लेकर लम्बे समय तक छाया रहा। बहुमत के निर्णय में न्यायमूर्ति के0 सुब्बाराव का कथन था कि–

(1) संविधान संशोधन भी अनु0 13 में प्रयुक्त शब्द 'विधि' में सम्मिलित है, अतः मूल अधिकारों को कम करने वाला या छीनने वाला संशोधन शून्य है और,
(2) अनु0 368 केवल संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन करता है, संशोधन की शक्ति का नहीं।

मुख्य न्यायमूर्ति का कहना यह था कि मूल अधिकारों का संविधान में नैसर्गिक स्थान होने से संसद की शक्ति से परे है। यद्यपि अल्पमत का निर्णय देने वाले न्यायाधीशों के भले यह बात नहीं उतरी थी और वे शंकरी प्रसाद और सज्जन सिंह के मामले में दिये गये अपने निर्णय पर अटल रहे। उनका यही कहना था कि अनु0 13 में प्रयुक्त शब्द विधि के अन्तर्गत केवल साधारण विधियाँ आती है, संवैधानिक संशोधन नहीं।

संविधान का चौबीसवाँ संशोधन अधिनियम विधायिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति परीक्षण का एक विशेष केन्द्र बिन्दु रहा है। भारत में अक्सर यह परम्परा रही है कि जब–जब न्यायपालिका ने सरकार अथवा विधायिका के विरुद्ध कोई निर्णय दिया, तब तब संसद ने उसके प्रभाव को समाप्त करने के लिए संविधान में संशोधन किया। यहाँ पर भी इसी परम्परा का निर्वाह किया गया।

भविष्य लक्षी विनिर्णय :

पृष्ठभूमि मे जाने पर स्पष्ट हो जाता है कि पहले बहुमत ने उद्घोषित किया कि 17वाँ संविधान संशोधन अधिनियम अविधिमान्य है। पहले उच्चतम न्यायालय ने विधिमान्य ठहराया था। 1950 और 1967 के बीच बड़ी संख्या में ऐसे विधान बनाये गये जो इन संशोधनों पर आधारित थे। यदि उच्चतम न्यायालय यह मानता कि यह संशोधन पहले से ही शून्य थे तो इसके परिणाम स्वरूप बहुत बड़ी संख्या में अधिनियम अविधिमान्य हो जाते और उनके आधार पर किये गये लाखों संव्यवहार प्रश्नगत हो जाते। इससे घोर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती। इससे बचने के लिए न्यायाधीशों ने भविष्यलक्षी विनिर्णय के सिद्धान्त की सृष्टि की और उसे लागू किया। इसका प्रभाव यह हुआ कि गोलकनाथ के द्वारा वे संशोधन अविधिमान्य नहीं ठहराये गये जो किये जा चुके थे किन्तु भविष्य में गोलकनाथ के प्रतिपादित सिद्धान्त लागू होंगे और संसद को मूल अधिकारों को छोटा करने अथवा नष्ट करने की शक्ति नही होगी।

नार्थ पाई का विधेयक सत्तारूढ़ दल को उच्चतम न्यायालय की गोलकनाथ में दी गयी व्यवस्था संतुष्ट नहीं कर सकी कुछ अन्य दलों के संसद सदस्यों का यह विचार था कि इससे संसद की शक्ति कम हो गयी। एक सांसद नार्थ पाई अनु0 368 का संशोधन करके संसद को मूल अधिकारों का संशोधन करने की शक्ति वापस दिलाने का एक गैर सरकार विधेयक पुनः स्थापित किया। कुछ लोगों ने इस विधेयक को उचित बताते हुए यह कहा कि इससे संसद की सर्वोच्चता स्थापित होती है यह विधेयक एक प्रवर समिति को सौंपा गया जिसने अपना प्रतिवेदन दिया। 1969 एवं 1970 में कांग्रेस दल का विभाजन हो गया सत्तारूढ़ दल ने साम्यवादियों का राष्ट्रीयकरण का मार्ग अपनाया। कांग्रेस को लोकसभा में कार्यकारी बहुमत बनाने के लिए एक साम्यवादी समर्थन की आवश्यकता थी। कांग्रेस ने प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया तथा राजाओं के प्रिवी पर्स समाप्त कर दिये। संविधान में पूरी गम्भीरता से वचन देकर इन प्रिवी पक्षों की प्रत्याभूति दी गयी थी। प्रत्याभूति दी गयी थी क्योंकि इन राजाओं ने स्वेच्छा से अपनी आस्तियाँ राष्ट्र को समर्पित कर दी थी। न्यायालय ने दोनों मामलों में सरकार के विरुद्ध निर्णय दिया ।(ए आई आर 1970, एस सी 564,व ए आई आर 1971, एस सी 530)

इस प्रकार संसद ने 24वाँ संशोधन विधेयक पारित करके अनु0 13 और 368 को संशोधन कर दिया। इसका तात्कालिक उद्देश्य गोलकनाथ के निर्णय को हटाना और संसद को संविधान की शक्ति देना था। संसद ने 25वाँ संशोधन भी पारित किया ।[1] साथ 26वाँ संशोधन अधिनियम भी पारित किया गया।

तृतीय चरण :

जैसा कि उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि विधायिका ने न्यायालयों के निर्णय के प्रभाव को समाप्त करने के लिए समय–समय पर संविधान में संशोधन का सहारा लिया तो यह भी कहना उचित होगा कि न्यायालयों ने कभी तो संशोधनों का अनुसमर्थन कर उन पर भी अपनी पुष्टि की मुहर लगा दी तो कभी उसे सशर्त बनाकर अपने अहम की तुष्टि कर ली। ऐसा ही कुछ केशवानन्द भारती(ए आई आर 1973, एस सी 1461) के वाद में हुआ है। इस मामले में संविधान के 24वें संशोधन अधिनियम की विधिमान्यता को चुनौती दी गयी थी। मुख्य विचारणीय प्रश्न यह था कि अनु0 368 के अन्तर्गत संसद को संविधान में संशोधन की शक्ति किस सीमा तक प्राप्त है? उच्चतम न्यायालय ने एक तरफ चौबीसवें संशोधन अधिनियम की संवैधानिकता की तो पुष्टि कर दी किन्तु दूसरी तरफ यह कहकर अपने अहम की पुष्टि कर ली कि संसद ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती जिसे संविधान का आधारभूत ढांचा ही नष्ट हो जाये। इस प्रकार इस मामले में उच्चतम न्यायालय संसद की संशोधन की शक्ति को विधिमान्य ठहराया ही साथ ही

उसे नियंत्रित भी बताया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि संविधान ही संसद का जनक है, अतः संसद संविधान में निहित मूल तत्वों के अनुसार ही अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती है। मूल तत्व संविधान की प्रस्तावना में निहीत है।

केशवनान्द भारती का वाद एक विशिष्ट वाद था। मुख्य न्यायाधीश सीकरी ने याचिकाओं को सुनने के लिए 13 न्यायाधीशों की न्यायपीठ गठित की।[3] बहुमत के जो निष्कर्ष थे उसका न्यायालय ने संक्षेप बनाया निष्कर्ष इस प्रकार है–

1. गोलकनाथ के निर्णय को उलट दिया गया।
2. अनुच्छेद 368 संसद को संविधान की आधारिक संरचना या इसके आधार स्तम्भों में परिवर्तन की शक्ति नहीं देता।
3. 24वां संशोधन अधिनियम विधिमान्य है।
4. 24वें संशोधन अधिनियम का कुछ भाग अविधिमान्य है। अवैध भाग है– और कोई विधि जिसमें यह घोषणा है कि वह ऐसी नीति को प्रभावी करने के लिए किसी न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जायेगी कि वह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करती है।
5. 29वां संशोधन अधिनियम विधिमान्य है।

गोलकनाथ में मूल अधिकारों की प्राथमिकता दी गयी। केशवानन्द में यह विचार रखा गया कि संविधान के कुछ उपबंध भी समान महत्व के हैं। यदि कोई उपबंध आध्यात्मिक लक्षण है तो उसका संशोधन नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 368 के अधीन संसद एक पूर्ण तथा नया संविधान नहीं लिख सकती और पुराने की जगह नया नहीं ला सकती।(शर्मा,पृ 365)

अनुच्छेद 31ग के कुछ भाग को अविधिमान्य घोषित करके केशवानन्द ने राज्य विधानमण्डलों पर रोक लगा दी अन्यथा वे इस शक्ति का प्रयोग करके संविधान का संशोधन कर सकते थे। अनु0 31ग में यह अधिकथित है कि राज्य विधानमण्डल कोई विधि बनाता है तो उसमें यह घोषणा करता है कि वह विधि अनु0 39ख और 39ग में विनिर्दिष्ट नीति को प्रभावी करने के लिए है तो कोई न्यायालय उस विधि की संमीक्षा नहीं कर सकेगा। इस प्रकार राज्य विधानमण्डल ऐसी विधि बना सकता था जो पूर्णतया न्यायालय रोधी होती अर्थात जिसकी परीक्षा न्यायालय नहीं कर सकते थे। केशवानन्द ने उसे ऐसी शक्ति से वंचित कर दिया। न्यायालयों के पास न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति बनी रही। विधायी घोषणा उस शक्ति का नाश नहीं कर सकती। केशवनानन्द से यह प्रवृत हो जाता है कि न्यायाधीश समय आने पर देशहित में उच्च कोटि के नये सिद्धान्तों की सर्जना कर सकते हैं। इससे तात्कालिक दो तिहाई बहुमत द्वारा संविधान पर प्रहार किया जाना रुक गया और राष्ट्र की रक्षा हुई क्योंकि बहुमत के पीछे संकीर्ण राजनीति या स्वार्थ की प्रेरणा हो सकती है। आधारिक लक्षण को नष्ट नहीं किया जा सकता ।(वही,पृ366)

मुख्य न्यायमूर्ति सीकरी ने संविधान के मूलभूत ढांचे की निम्नांकित दृष्टांत दिये हैं।

1. संविधान की सर्वोपरिता
2. संविधान का गणतान्त्रिक एवं लोकतान्त्रिक रूप
3. संविधान का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप
4. विधानपालिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के मध्य शक्ति पृथक्करण एवं
5. संविधान की संघात्मक प्रकृति

न्यायमूर्ति शेलट एवं ग्रोवर ने इनके अतिरिक्त आधारभूत ढांचे के निम्नांकित दृष्टांत और दिये हैं।

(क) मूल अधिकारों एवं राज्य के नीति निदेशक तत्वों द्वारा सुनिश्चित व्यक्ति की गरिमा, तथा
(ख) देश की एकता और अखण्डता

न्यायमूर्ति हेगड़े और मुखर्जी ने इस श्रृंखला में अग्रलिखित दृष्टांत जोडे हैं।

(अ) भारत की सम्प्रभुता, एवं
(ब) कल्याणकारी राज्य की स्थापना(बावेल, पृ 54.55)

केशवानन्द भारती के बाद न्यायालय के समक्ष ऐसे कई मामले आये जिनमें आधारभूत ढांचे के सिद्धान्त की अग्नि परीक्षा हुई सबसे पहले महत्वपूर्ण मामला आया– इन्दिरा नेहरू गांधी बनाम राजनारायण(ए आई आर 1975, एस सी 2299) इसमें न्यायामूर्ति जगमोहन सिन्हा द्वारा (इलाहाबाद उच्च न्यायालय) द्वारा अपीलार्थी के चुनाव को भ्रष्ट आचरण द्वारा शून्य घोषित कर दिया गया था। साथ ही अपीलार्थी को छः वर्ष के लिए चुनाव में अभ्यर्थी होने के लिए अनर्ह भी कर दिया गया था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के इस निर्णय को निष्प्रभावी करने के लिए संसद द्वारा 1975 में 39वां संशोधन अधिनियम पारित किया गया[5] जिसके द्वारा न केवल अपीलार्थी के चुनाव को वैध बनाया गया अपितु संविधान में एक नया अनुच्छेद जोड़ा गया, जिसका आशय यह घोषणा करना था कि अपीलार्थी का चुनाव वैध था। वैध है वैध रहेगा। इसके द्वारा प्रधानमंत्री के निर्वाचन सम्बन्धी मामलों को न्यायालय की अधिकारिता से ही बाहर कर दियास गया। इसे उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गयी। उच्चतम न्यायालय ने मध्यम मार्ग अपनाते हुए अपीलार्थी के चुनाव को तो वैध करार दे दिया, तथाकथित संशोधन यह कहते हुए अवैध घोषित कर दिया कि यह संविधान के आधारभूत ढांचे को नष्ट करने वाला है। उच्चतम न्यायालय ने यह कहा कि लोकतंत्र संविधान का आधारभूत ढांचा है और लोकतंत्र की सफलता एवं रक्षा के लिए चुनाव का स्वतंत्र एवं निष्पक्ष होना आवश्यक है। इसे न्यायालय की अधिकारिता से बाहर नहीं किया जा सकता। इसी अनुक्रम में उच्चतम न्यायालय ने 'आधारभूत' ढांचे की कड़ी में निम्नांकित दृष्टांत और जोड़ दिये।

अ– विधि शासन
ब– न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति
स– स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव पर आधारिक लोकतंत्र

आधारभूत ढांचे की अग्नि परीक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण मामला एस0पी0गुप्ता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया(ए आई आर

1982, एस सी 1949) को आया। इसमें उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अनु0 32 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता संविधान का आधारभूत ढांचा है।

जो लोग यह चाहते थे कि संसद की शक्तियां असीमित हों वे इन्दिरा नेहरू गांधी के निर्णय से व्यथित हुए। संसद ने इस बार एक संशोधन अधिनियम पारित किया। जो संविधान का एक प्रकार से पुनरीक्षण था। अनु0 368 का संशोधन किया गया और दो नये खण्ड 4 और 5 अन्तः स्थापित किये गये खण्ड (4) में यह घोषणा की गयी कि 03/01/1977 के पहले या उसके पश्चात[6] किया गया संविधान का कोई संशोधन किसी भी न्यायालय में किसी भी आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा। खण्ड (5) में यह कहा गया कि संसद को संशोधन करने की संविधायी शक्ति पर किसी प्रकार का निर्बन्धन नहीं होगा।

चतुर्थ चरणः–

मिनर्वा मिल्स अन्तिम संग्राम या न्यायमूर्ति चन्द्रचूड़ ने बहुमत की राय उद्घोषित की जो संसद को सीमित शक्ति देने के पक्ष में थे। इस निर्णय के पश्चात स्थिति में अभी तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इस निर्णय में यह अधिकथित था–

(1) 42वें संशोधन द्वारा अनु0 31ग में किया गया संशोधन अविधिमान्य है क्योंकि उसमें संविधान का आधरिक लक्षण प्रभावित होता है।
(2) खण्ड (4) एवं (5) अविधिमान्य है क्योंकि वे संविधान के दो आधारिक लक्षणों का उल्लंघन करते हैं। ये लक्षण ही संशोधन करने की शक्ति का सीमित करना और न्यायिक पुनरावलोकन।
(3) खण्ड (2) द्वारा विहित प्रक्रिया आज्ञापालक है। यदि उस प्रक्रिया का आज्ञापालन किये बिना कोई संशोधन पारित किया जाता है तो वह अविधिमान्य होगा।

मिनर्वा मिल्स के पश्चात यह भलीभांति स्थापित हो गया कि संशोधन की शक्ति मर्यादित और सीमित है। नवीं सूची में अधिनियमों को डालकर उन्हें न्यायिक पुनर्विलोकन की पहुंच से बाहर करने की प्रक्रिया अब प्रभावी नहीं रह गयी है। वामन राव(ए आई आर 1980, एस सी 1789) में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा था कि 24/04/1973 से पहले किये गये संशोधन जिसके द्वारा कोई अधिनियम नवीं अनुसूची में डाला गया है। आधारिक संरचना को क्षति पहुंचाता या नष्ट करता है तो यह सुरक्षा प्राप्त नहीं होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विधायिका और न्यायपालिका में आरम्भ से ही द्वन्द्व चलता आ रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह द्वन्द्व तब तक चलता रहेगा जब तक उच्चतम न्यायालय संविधान का रक्षक एवं नागरिकों के मूल अधिकारों का सजग प्रहरी है।

टिप्पणी

1. संविधान 25वॉ संशोधन अधिनियम 1971– अनु0 31 के खण्ड (2) का संशोधन किया गया, अनु0 31ग अंतः स्थापित किया गया। सम्पत्ति का अर्जन किये जाने पर प्रतिकर पर्यापत है या नहीं इसके बारे में न्यायालय की अधिकारिता समाप्त कर दी गयी। एक नया खण्ड जोड़कर यह उपबंध किया गया कि यदि किसी अधिनियम में यह घोषणा है कि वह अनु0 39 के खण्ड (ख) एवं (ग) के निदेशक तत्वों के प्रमाण देने के लिए है तो उसे इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जायेगा कि उससे मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है।

2. यह उच्चतम न्यायालय में गठित सबसे अधिक संख्या वाली पीठ थी। इसकी सुनवाई 5 माह (76 कार्य दिवस) तक चली। यह भी एक कीर्तिमान है। बहस भी सर्वाधिक दिन चली–69 कार्यदिवस से अधिक दिनों तक 11 निर्णय दिये गये जो लगभग 500 मुर्दित पृष्ठों में है। न्यायपीठ में न्यायाधीश 7–6 मे विभाजित थे। बहुसंख्य न्यायाधीशों ने अपने निष्कर्षों का सार संक्षेप तैयार किया इस संक्षिप्त पर 9 न्यायाधीशों ने हस्ताक्षर किये। 4 ने हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। न्यायाधीश हंसराज खन्ना की राय ऐसी थी कि पलड़ा झुक गया।

3. श्रीमती गांधी की अपील की सुनवाई उच्चतम न्यायालय में 11 अगस्त 1975 को होनी थी। 7 अगस्त एवं 10 अगस्त के मध्य उक्त संशोधन दोनों सदनों द्वारा परित कर दिया गया अपेक्षित संख्या में राज्य विधानमण्डलों ने इसका अनुमोदन कर दिया और राष्ट्रपति ने अपनी अनुमति दे दी। विधेयक लोकसभा में 7 अगस्त को पुनः स्थापित हुआ और उसी दिन पारित कर दिया गया। राज्य सभा ने उसे 8 अगस्त को पारित किया। 10 अगस्त 1975 को राष्ट्रपति ने अनुमति दे दी और वह राजपत्र में प्रकाशित हो गया।

सन्दर्भ

जवाहर लाल नेहरू स्पीचेज 1949–1953 पब्लिकेशंस डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया नई दिल्ली खण्ड–3, 1954 (1963) संस्करण

सज्जन सिंह बनाम राजस्थान राज्य *ए0आई0आर0 1965,* एस0सी0845

आई0सी0 गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य ए0आई0आर0, 1967, एस0 जी0 1643

केशवानन्द भारती बनाम स्टेट ऑफ केरल ए0आई0आर0 1973 एस0सी0 1461

मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ ए0आई0आर0 1980 एस0सी0 1789

वामन राव बनाम भारत संघ, ए0आई0आर0 1981, एस0 सी0 271